ब्रह्मराक्षस का शिष्य

हिन्दी ADDA

गजानन माधव मुक्तिबोध

ब्रह्मराक्षस का शिष्य

https://www.hindiadda.com/brahmarakshas-ka-shishy/

उस महाभव्य भवन की आठवीं मंजिल के जीने से सातवीं मंजिल के जीने की सूनी-सूनी सीढियों पर उतरते हुए, उस विद्यार्थी का चेहरा भीतर से किसी प्रकाश से लाल हो रहा था।

वह चमत्कार उसे प्रभावित नहीं कर रहा था, जो उसने हाल-हाल में देखा। तीन कमरे पार करता हुआ वह विशाल वज्रबाहु हाथ उसकी आँखों के सामने फिर से खिंच जाता। उस हाथ की पवित्रता ही उसके खयाल में जाती किन्तु वह चमत्कार, चमत्कार के रूप में उसे प्रभावित नहीं करता था। उस चमत्कार के पीछे ऐसा कुछ है, जिसमें वह घुल रहा है, लगातार घुलता जा रहा है। वह कुछ क्या एक महापण्डित की जिन्दगी का सत्य नहीं है? नहीं, वही है! वही है!

पाँचवी मंजिल से चौथी मंजिल पर उतरते हुए, ब्रह्मचारी विद्यार्थी, उस प्राचीन भव्य भवन की सूनी-सूनी सीढियों पर यह श्लोक गाने लगता है।

मेघैर्मेदुरमम्बरं वनभवः श्यामास्तमालद्रुमैः - इस भवन से ठीक बारह वर्ष के बाद यह विद्यार्थी बाहर निकला है। उसके गुरू ने जाते समय, राधा-माधव की यमुना-कूल-क्रीडा में घर भूली हुई राधा को बुला रहे नन्द के भाव प्रकट किये हैं। गुरू ने एक साथ श्रृंगार और वात्सल्य का बोध विद्यार्थी को करवाया। विद्याध्ययन के बाद, अब उसे पिता के चरण छूना है। पिताजी! पिताजी! माँ! माँ! यह ध्वनि उसके हृदय से फूट निकली।

किन्तु ज्यों-ज्यों वह छन्द सूने भवन में गूँजता, घूमता गया त्यों-त्यों विद्यार्थी के हृदय में अपने गुरू की तसवीर और भी तीव्रता से चमकने लगी।

भाग्यवान् है वह जिसे ऐसा गुरू मिले!

जब वह चिडियों के घोंसलों और बर्रों के छत्तों-भरे सूने ऊँचे सिंहाद्वार के बाहर निकला तो एकाएक राह से गुजरते हुए लोग भूत भूत कह कर भाग खडे हुए। आज तक उस भवन में कोई नहीं गया था। लोगों की धारणा थी कि वहाँ एक ब्रह्मराक्षस रहता है।

बारह साल और कुछ दिन पहले --

सडक़ पर दोपहर के दो बजे, एक देहाती लडक़ा, भूखा-प्यासा अपने सूखे होठों पर जीभ फेरता हुआ, उसी बगल वाले ऊँचे सेमल के वृक्ष के नीचे बैठा हुआ था। हवा के झोकों से, फूलों के फलों का रेशमी कपास हवा में तैरता हुआ, दूर-दूर तक और

इधर-उधर बिखर रहा था। उसके माथे पर फिक्रें गुँथ-बिंध रही थीं। उसने पास में पडी हुई एक मोटी ईंट सिरहाने रखी और पेड-तले लेट गया।

धीरे-धीरे, उसकी विचार-मग्नता को तोडते हुए कान के पास उसे कुछ फुसफुसाहट सुनाई दी। उसने ध्यान से सुनने की कोशिश की। वे कौन थे?

उनमें से एक कह रहा था, "अरे, वह भट्ट। नितान्त मूर्ख है और दम्भी भी। मैंने जब उसे ईशावास्योपनिषद् की कुछ पंक्तियों का अर्थ पूछा, तो वह बौखला उठा। इस काशी में कैसे-कैसे दम्भी इकठ्ठे हुए हैं?

वार्तालाप सुनकर वह लेटा हुआ लडक़ा खट से उठ बैठा। उसका चेहरा धूल और पसीने से म्लान और मलिन हो गया था, भूख और प्यास से निर्जीव।

वह एकदम, बात करनेवालों के पास खडा हुआ। हाथ जोडे, माथा जमीन पर टेका। चेहरे पर आश्चर्य और प्रार्थना के दयनीय भाव! कहने लगा, हे विद्वानों! मैं मूर्ख हूँ। अपढ देहाती हूँ किन्तु ज्ञान-प्राप्ति की महत्वाकांक्षा रखता हूँ। हे महाभागो! आप विद्यार्थी प्रतीत होते हैं। मुझे विद्वान गुरू के घर की राह बताओ।

पेड-तले बैठे हुए दो बटुक विद्यार्थी उस देहाती को देखकर हँसने लगे; पूछा -

कहाँ से आया है?

दक्षिण के एक देहात से! ...पढने-लिखने से मैंने बैर किया तो विद्वान् पिताजी ने घर से निकाल दिया। तब मैंने पक्का निश्चय कर लिया कि काशी जाकर विद्याध्ययन करूँगा। जंगल-जंगल घूमता, राह पूछता, मैं आज ही काशी पहुँचा हूँ। कृपा करके गुरू का दर्शन कराइए।

अब दोनों विद्यार्थी जोर-जोर से हँसने लगे। उनमें-से एक, जो विदूषक था, कहने लगा --

देख बे सामने सिंहद्वार है। उसमें घुस जा, तुझे गुरू मिल जायेगा। कह कर वह ठठाकर हँस पडा।

आशा न थी कि गुरू बिलकुल सामने ही है। देहाती लडक़े ने अपना डेरा-डण्डा सँभाला और बिना प्रणाम किये तेजी से कदम बढाता हुआ भवन में दाखिल हो गया।

दूसरे बटुक ने पहले से पूछा, तुमने अच्छा किया उसे वहाँ भेज कर? उसके हृदय में खेद था और पाप की भावना।

दूसरा बटुक चुप था। उसने अपने किये पर खिन्न होकर सिर्फ इतना ही कहा, आखिर ब्रह्मराक्षस का रहस्य भी तो मालूम हो।

सिंहद्वार की लाल-लाल बरें गूँ-गूँ करती उसे चारों ओर से काटने के लिए दौडी; लेकिन ज्यों ही उसने उसे पार कर लिया तो सूरज की धूप में चमकनेवाली भूरी घास से भरे, विशाल, सूने आँगन के आस-पास, चारों ओर उसे बरामदे दिखाई दिये -- विशाल, भव्य और सूने बरामदे जिनकी छतों में फानूस लटक रहे थे। लगता था कि जैसे अभी-अभी उन्हें कोई साफ करके गया हो! लेकिन वहाँ कोई नहीं था।

आँगन से दीखनेवाली तीसरी मंजिल की छज्जेवाली मुँडेरे पर एक बिल्ली सावधानी से चलती हुई दिखाई दे रही थी। उसे एक जीना भी दिखाई दिया, लम्बा-चौडा, साफ-सुथरा। उसकी सीढियाँ ताजे गोबर से पुती हुई थीं। उसकी महक नाक में घुस रही थी। सीढियों पर उसके चलने की आवाज गूँजती; पर कहीं, कुछ नहीं!

वह आगे-आगे चढता-बढता गया। दूसरी मंजिल के छज्जे मिले जो बीच के आँगन के चारों ओर फैले हुए थे। उनमें सफेद चादर लगी गद्दियाँ दूर-दूर तक बिछी हुई थीं। एक ओर मृदंग, तबला, सितार आदि अनेक वाद्य-यन्त्र करीने से रखे हुए थे। रंग-बिरंगे फानूस लटक रहे थे और कहीं अगरबत्तियाँ जल रही थीं।

इतनी प्रबन्ध-व्यवस्था के बाद भी उसे कहीं मनुष्य के दर्शन नहीं हुए। और न कोई पैरों की आवाजें सुनाई दीं, सिवाय अपनी पग-ध्वनि के। उसने सोचा शायद ऊपर कोई होगा।

उसने तीसरी मंजिल पर जाकर देखा। फिर वही सफेद-सफेद गद्दियाँ, फिर वही फानूस, फिर वही अगरबत्तियाँ। वही खाली-खालीपन, वही सूनापन, वही विशालता, वही भव्यता और वही मनुष्य-हीनता।

अब उस देहाती के दिल में से आह निकली। यह क्या? यह कहाँ फँस गया; लेकिन इतनी व्यवस्था है तो कहीं कोई और जरूर होगा। इस खयाल से उसका डर कम हुआ और वह बरामदे में से गुजरता हुआ अगले जीने पर चढने लगा।

इन बरामदों में कोई सजावट नहीं थी। सिर्फ दरियाँ बिछी हुई थीं। कुछ तैल-चित्र टँगे थे। खिडक़ियाँ खुली हुई थीं जिनमें-से सूरज की पीली किरणें आ रही थीं। दूर ही से

खिडक़ी के बाहर जो नजर जाती तो बाहर का हरा-भरा ऊँचा-नीचा, माल-तलैयों, पेडों-पहाडों वाला नजारा देखकर पता चलता कि यह मंजिल कितनी ऊँची हैं और कितनी निर्जन।

अब वह देहाती लडक़ा भयभीत हो गया। यह विशालता और निर्जनता उसे आतंकित करने लगी। वह डरने लगा। लेकिन वह इतना ऊपर आ गया था कि नीचे देखने ही से आँखों में चक्कर आ जाता। उसने ऊपर देखा तो सिर्फ एक ही मंजिल शेष थी। उसने अगले जीने से ऊपर की मंजिल चढना तय किया।

डण्डा कन्धे पर रखे और गठरी खोंसे वह लडक़ा धीरे-धीरे अगली मंजिल का जीना चढने लगा। उसके पैरों की आवाज उसी से जाने क्या फुसलाती और उसकी रीढ

क़ी हड्डी में-से सर्द संवेदनाएँ गुजरने लगतीं।

जीन खत्म हुआ तो फिर एक भव्य बरामदा मिला, लिपा-पुता और अगरू-गन्ध से महकता हुआ। सभी ओर मृगासन, व्याघ्रासन बिछे हुए। एक ओर योजनों विस्तार-दृश्य देखती, खिडक़ी के पास देव-पूजा में संलग्न-मन मुँदी आँखोंवाले ऋषि-मनीषि कश्मीर की कीमती शाल ओढे ध्यानस्थ बैठे।

लडक़े को हर्ष हुआ। उसने दरवाजे पर मत्था टेका। आनन्द के आँसू आँखों में खिल उठे। उसे स्वर्ग मिल गया।

ध्यान-मुद्रा भंग नहीं हुई तो मन-ही-मन माने हुए गुरू को प्रणाम कर लडक़ा जीने की सर्वोच्च सीढी पर लेट गया। तुरन्त ही उसे नींद आ गयी। वह गहरे सपनों में खो गया। थकित शरीर और सन्तुष्ट मन ने उसकी इच्छाओं को मूर्त-रूप दिया। ..वह विद्वान् बन कर देहात में अपने पिता के पास वापस पहुँच गया है। उनके चरणों को पकडे, उन्हें अपने आँसुओं से तर कर रहा है और आर्द्र-हृदय हो कर कह रहा है, पिताजी! मैं विद्वान बन कर आ गया, मुझे और सिखाइए। मुझे राह बताइए। पिताजी! पिताजी! और माँ अंचल से अपनी आँखें पोंछती हुई, पुत्र के ज्ञान-गौरव से भर कर, उसे अपने हाथ से खींचती हुई गोद में भर रही है। साश्रुमुख पिता का वात्सल्य-भरा हाथ उसके शीश पर आशीर्वाद का छत्र बन कर फैला हुआ है।

वह देहाती लडक़ा चल पडा और देखा कि उस तेजस्वी ब्राह्मण का दैदिप्यमान चेहरा, जो अभी-अभी मृदु और कोमल होकर उस पर किरनें बिखेर रहा था, कठोर और अजनबी होता जा रहा है।

ब्राह्मण ने कठोर होकर कहा, तुमने यहाँ आने का कैसे साहस किया? यहाँ कैसे आये?लडक़े ने मत्था टेका, भगवन्! मैं मूढ हूँ, निरक्षर हूँ, ज्ञानार्जन करने के लिए आया हूँ।

ब्राह्मण कुछ हँसा। उसकी आवाज धीमी हो गयी किन्तु दृढता वही रही। सूखापन और कठोरता वही।

तूने निश्चय कर लिया है?

जी!

नहीं, तुझे निश्चय की आदत नहीं है; एक बार और सोच ले! ...ज़ा फिलहाल नहा-धो उस कमरे में, वहाँ जाकर भोजन कर लेट, सोच-विचार! कल मुझ से मिलना।

दूसरे दिन प्रत्युष काल में लडक़ा गुरू से पूर्व जागृत हुआ। नहाया-धोया। गुरू की पूजा की थाली सजायी और आज्ञाकारी शिष्य की भांति आदेश की प्रतीक्षा करने लगा। उसके शरीर में अब एक नई चेतना आ गयी थी। नेत्र प्रकाशमान थे।

विशालबाहु पृथु-वक्ष तेजस्वी ललाटवाले अपने गुरू की चर्या देखकर लडक़ा भावुक-रूप से मुग्ध हो गया था। वह छोटे-से-छोटा होना चाहता था कि जिससे लालची चींटी की भाँति जमीन पर पडा, मिट्टी में मिला, ज्ञान की शक्कर का एक-एक कण साफ देख सके और तुरन्त पकड सके!

गुरू ने संशयपूर्ण दृष्टि से देख उसे डपट कर पूछा; सोच-विचार लिया?

जी! की डरी हुई आवाज!

कुछ सोच कर गुरू ने कहा, नहीं, तुझे निश्चय करने की आदत नहीं है। एक बार पढाई शुरू करने पर तुम बारह वर्ष तक फिर यहाँ से निकल नहीं सकते।

सोच-विचार लो। अच्छा, मेरे साथ एक बजे भोजन करना, अलग नहीं!

और गुरू व्याघ्रासन पर बैठकर पूजा-अर्चा में लीन हो गये। इस प्रकार दो दिन और बीत गये। लडक़े ने अपना एक कार्यक्रम बना लिय था, जिसके अनुसार वह काम करता रहा। उसे प्रतीत हुआ कि गुरू उससे सन्तुष्ट हैं।

एक दिन गुरू ने पूछा, तुमने तय कर लिया है कि बारह वर्ष तक तुम इस भवन के बाहर पग नहीं रखोगे?

नतमस्तक हो कर लडक़े ने कहा, जी!

गुरू को थोडी हँसी आयी, शायद उसकी मूर्खता पर या अपनी मूर्खता पर, कहा नहीं जा सकता। उन्हें लगा कि क्या इस निरे निरक्षर के आँखें नहीं है? क्या यहाँ का वातावरण सचमुच अच्छा मालूम होता है? उन्होंने अपने शिष्य के मुख का ध्यान से अवलोकन किया। एक सीधा, भोला-भाला निरक्षर बालमुख! चेहरे पर निष्कपट, निश्छल ज्योति!

अपने चेहरे पर गुरू की गडी हुई दृष्टि से किंचित विचलित होकर शिष्य ने अपनी निरक्षर बुध्दिवाला मस्तक और नीचा कर लिया।

गुरू का हृदय पिघला! उन्होंने दिल दहलाने वाली आवाज से, जो काफी धीमी थी, कहा, देख! बारह वर्ष के भीतर तू वेद, संगीत, शास्त्र, पुराण, आयुर्वेद, साहित्य, गणित आदि-आदि समस्त शास्त्र और कलाओं में पारंगत हो जावेगा। केवल भवन त्याग कर तुझे बाहर जाने की अनुज्ञा नहीं मिलेगी। ला, वह आसन। वहाँ बैठ।

और इस प्रकार गुरू ने पूजा-पाठ के स्थान के समीप एक कुशासन पर अपने शिष्य को बैठा, परंपरा के अनुसार पहले शब्द-रूपावली से उसका विद्याध्ययन प्रारम्भ कराया।

गुरू ने मृदुता ने कहा, -- बोलो बेटे --

रामः, रामौ, रामाः

और इस बाल-विद्यार्थी की अस्फुट हृदय की वाणी उस भयानक निःसंग, शून्य, निर्जन, वीरान भवन में गूँज-गूँज उठती।

सारा भवन गाने लगा --

रामः रामौ रामाः -- प्रथमा!

धीरे-धीरे उसका अध्ययन सिध्दान्तकौमुदी तक आया और फिर अनेक विद्याओं को आत्मसात् कर, वर्ष एक-के-बाद-एक बीतने लगे। नियमित आहार-विहार और संयम के फलस्वरूप विद्यार्थी की देह पुष्ट हो गयी और आँखों में नवीन तारूण्य की चमक

प्रस्फुटित हो उठी। लडक़ा, जो देहाती था अब गुरू से संस्कृत में वार्तालाप भी करने लगा।

केवल एक ही बात वह आज तक नहीं जान सका। उसने कभी जानने का प्रयत्न नहीं किया। वह यह कि इस भव्य-भवन में गुरू के समीप इस छोटी-सी दुनिया में यदि और कोई व्यक्ति नहीं है तो सारा मामला चलता कैसे है? निश्चित समय पर दोनों गुरू-शिष्य भोजन करते। सुव्यवस्थित रूप से उन्हें सादा किन्तु सुचारू भोजन मिलता। इस आठवीं मंजिल से उतर सातवीं मंजिल तक उनमें से कोई कभी नहीं गया। दोनों भोजन के समय अनेक विवादग्रस्त प्रश्नों पर चर्चा करते। यहाँ इस आठवीं मंजिल पर एक नई दुनिया बस गयी।

जब गुरू उसे कोई छन्द सिखलाते और जब विद्यार्थी मन्दाक्रान्ता या शार्दूल्विक्रीडित गाने लगता तो एकाएक उस भवन में हलके-हलके मृदंग और वीणा बज उठती और वह वीरान, निर्जन, शून्य भवन वह छन्द गा उठता।

एक दिन गुरू ने शिष्य से कहा, बेटा! आज से तेरा अध्ययन समाप्त हो गया है। आज ही तुझे घर जाना है। आज बारहवें वर्ष की अन्तिम तिथि है। स्नान-सन्ध्यादि से निवृत्त हो कर आओ और अपना अन्तिम पाठ लो।

पाठ के समय गुरू और शिष्य दोनों उदास थे। दोनों गम्भीर। उनका हृदय भर रहा था। पाठ के अनन्तर यथाविधि भोजन के लिए बैठे।

दूसरे कक्ष में वे भोजन के लिए बैठे थे। गुरू और शिष्य दोनों अपनी अन्तिम बातचीत के लिए स्वयं को तैयार करते हुए कौर मुँह में डालने ही वाले थे कि गुरू ने कहा, बेटे, खिचडी में घी नहीं डाला है?

शिष्य उठने ही वाला था कि गुरू ने कहा, नहीं, नहीं, उठो मत! और उन्होंने अपना हाथ इतना बढा दिया कि वह कक्ष पार जाता हुआ, अन्य कक्ष में प्रवेश कर क्षण के भीतर, घी की चमचमाती लुटिया लेकर शिष्य की खिचडी में घी उडेलने लगा। शिष्य काँप कर स्तम्भित रह गया। वह गुरू के कोमल वृध्द मुख को कठोरता से देखने लगा कि यह कौन है? मानव है या दानव? उसने आज तक गुरू के व्यवहार में कोई अप्राकृतिक चमत्कार नहीं देखा था। वह भयभीत, स्तम्भित रह गया।

गुरू ने दु:खपूर्ण कोमलता से कहा, शिष्य! स्पष्ट कर दूँ कि मैं ब्रह्मराक्षस हूँ किन्तु फिर भी तुम्हारा गुरू हूँ। मुझे तुम्हारा स्नेह चाहिए। अपने मानव-जीवन में मैंने विश्व

की समस्त विद्या को मथ डाला किन्तु दुर्भाग्य से कोई योग्य शिष्य न मिल पाया कि जिसे मैं समस्त ज्ञान दे पाता। इसीलिए मेरी आत्मा इस संसार में अटकी रह गयी और मैं ब्रह्मराक्षस के रूप में यहाँ विराजमान रहा।

तुम आये, मैंने तुम्हें बार-बार कहा, लौट जाओ। कदाचित् तुममें ज्ञान के लिए आवश्यक श्रम और संयम न हो किन्तु मैंने तुम्हारी जीवन-गाथा सुनी। विद्या से वैर रखने के कारण, पिता-द्वारा अनेक ताडनाओं के बावजूद तुम गँवार रहे और बाद में माता-पिता-द्वारा निकाल दिये जाने पर तुम्हारे व्यथित अहंकार ने तुम्हें ज्ञान-लोक का पथ खोज निकालने की ओर प्रवृत्त किया। मैं प्रवृत्तिवादी हूँ, साधु नहीं। सैंकडों मील जंगल की बाधाएँ पार कर तुम काशी आये। तुम्हारे चेहरे पर जिज्ञासा का आलोक था। मैंने अज्ञान से तुम्हारी मुक्ति की। तुमने मेरा ज्ञान प्राप्त कर मेरी आत्मा को मुक्ति दिला दी। ज्ञान का पाया हुआ उत्तदायित्व मैंने पूरा किया। अब मेरा यह उत्तरदायित्व तुम पर आ गया है। जब तक मेरा दिया तुम किसी और को न दोगे तब तक तुम्हारी मुक्ति नहीं।

शिष्य, आओ, मुझे विदा दो।

अपने पिताजी और माँजी को प्रणाम कहना। शिष्य ने साश्रुमुख ज्यों ही चरणों पर मस्तक रखा आशीर्वाद का अन्तिम कर-स्पर्श पाया और ज्यों ही सिर ऊपर उठाया तो वहाँ से वह ब्रह्मराक्षस तिरोधान हो गया।

वह भयानक वीरान, निर्जन बरामदा सूना था। शिष्य ने ब्रह्मराक्षस गुरू का व्याघ्रासन लिया और उनका सिखाया पाठ मन-ही-मन गुनगुनाते हुए आगे बढ गया।